International Journal of History 2021; 3(2): 32-34

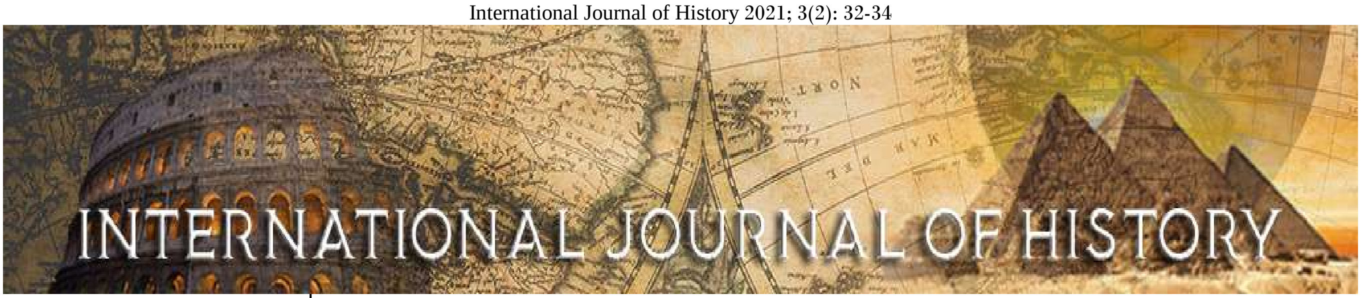

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2021; 3(2): 32-34
Received: 15-05-2021
Accepted: 17-06-2021

अभिषेक कुमार भगत
राजेन्द्रपुरी सिनेमा चौक, पावर हाउस के सामने, जिला–दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अभिषेक कुमार भगत
राजेन्द्रपुरी सिनेमा चौक, पावर हाउस के सामने, जिला–दरभंगा, बिहार, भारत

प्राचीन भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में दास प्रथा एवं अस्पृश्यता की समस्या

अभिषेक कुमार भगत

सारांश
दास वर्ग का चित्रण भारत के प्राचीनतम ग्रथ ऋग्वेद पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध ग्रन्थ एवं जैन ग्रंथों में भी उपलब्ध हैं, यह सत्य है। आधुनिक काल में स्त्री एवं दास वर्ग को जिस रूप में चित्रित किया गया है, उस रूप में वहाँ चित्रित नहीं है। प्राचीन काल में आर्य की स्थिति अच्छी थी और अनार्य की स्थिति दयनीय थी आर्यों की पूजा होती थी, वहीं सम्पूर्ण ऋग्वेद में अनार्यों की भर्त्सणा की गई है। इन्हें दास, दस्यु या असुर की संज्ञा दी गई। दासों और दस्युओं के अपने नगर थे जिनके विनाश की प्रार्थना आर्यों ने बार–बार इन्द्र से ही है। आर्यों–अनार्यों का संर्घष पर्याप्त समय तक चलता रहा, अन्त में आर्यों ने दस्यु तथा दास जातिवालों अनार्यों को बुरी तरह पराजित कर दिया। युद्ध में काम आने के पश्चात बहुत अधिक संख्या में दस्यु या दास जाति हो गईं। इन शेष लोगों को विवश होकर या तो आर्यों से कहीं बहुत दूर जंगल कन्दराओं की शरण लेनी पड़ी या तो उन्हीं की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। फलतः इस दस्यु या दास जाति के इतने अधिक लोग गुलाम बनाये गये कि दास शब्द का अर्थ ही गुलाम हो गया।

मुख्य शब्दः दास प्रथा, अस्पृश्यता की समस्या, दस्य

प्रस्तावनाः
प्राचीन भारत में अस्पृश्यता की भावना बहुत अधिक बढ़ी हुई थी। पहले तो केवल चांडाल ही अस्पृश्य माने जाते थे किंतु इस काल में रजक, चर्मकार आदि जातियाँ भी अस्पृश्य मानी जाने लगी। स्पर्श–दोष निवारण के लिए शुद्धि–क्रियाएँ करनी पड़ती थीं। अत्रि के अनुसार यदि चर्मकार, नट, व्याध इत्यादि जातियाँ द्विजाति के किसी अंग को स्पर्श करें तो वह अंग धो डालना चाहिए और पवित्र संस्कृत जल से आचमन करना चाहिए। सांप्रदायिक द्वेष के कारण भी कुछ व्यक्तियों को अस्पृश्य समझा जाता था। ब्रह्मपुराण के अनुसार बौद्ध, पाशुपत, जैन, लोकायन और कापालिकों को स्पर्श करने से व्यक्ति को सवस्त्र स्नान करके शुद्ध होना पड़ता था। ऋगवेद में सामाजिक पहलू के विभिन्न आयामों का दिग्दर्शन होता है। इसके आधार पर हिन्दू सामाजिक संगठन अपने वर्णाक्रम धर्म अर्थात जीवन में व्यवस्था और अवस्था पर आधारित कर्त्तव्य के लिए प्रसिद्व है। पुरुष सुक्त के अनुसार चार वर्ण वाली समाज व्यवस्था ब्रहमा के चार अंग से प्रक्ट हुई है। वर्णो के सृजन संबंधी इस अवधरणा को अंगीकार करते हुए मनु ने विभिन्न वर्णों के लिए कर्त्तव्य और व्यवसाय का निर्धारण भी कर दिया। कर्त्तव्य और व्यवसाय के मनमाने निर्धारण से विभिन्न वर्णों में आपसी वैमनस्य का सूत्रपात हुआ। जिससे उस वर्ण व्यवस्था में विभाजन और उप विभाजन होने लगा। विदेशी आक्रमणों की प्रत्येक लहर के साथ भी विभाजन और उप विभाजन होते रहे। आक्रमणकारी विदेशी अपने साथ नए मूल्य और विचार को लाते रहे, और स्थानीय जनता उससे प्रभावित होती गई। फलस्वरूप असंदिग्ध रूप से सामाजिक दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन हुए। जैन, बौद्व और हिन्दु धर्मावलम्बियों ने अहिंसा के सिद्वान्त पर जोर देकर सामाजिक विभाजन की एक नई रेखा खींच दीं, पशुबलि और उसके मांस को अपवित्र मानने वालों का एक पृथक समूह बन गया। समाज के भीतर आबादी के अलग–अलग वर्ग अपनी दशा सुधारने के लिए वर्ग–संघर्ष की ओर उन्मुख हुआ।वे समाज के बाहरी दबावों का सामना करते रहे और कभी–कभी दूसरे समाजों से पोषण भी पाते रहे, ‘‘ऐसी दशा में सभ्यता का पिछड़ना अनिवार्य था।’’ आदि काल में मानव जंगल में रहकर अपना जीवन–पालन करता था। इस अदिकालीन मानव–जीवन में आवश्यकता नाम की कोई वस्तु नहीं थी। उत्पादन के साधन पर किसी का अधिपात्य नहीं था। आवश्यकता बढ़ती गई और उत्पादन का नया–नया साधन मनुष्य द्वारा सृजित होने लगा, इस प्रयास में अपनी सफलता को देखकर मनुष्य दुगूने धैर्य और साहस के साथ उत्पादन के साधन में परिवर्तन लाने लगा।

इसी परिवर्तन के फलस्वरूप मानव कृषि एवं पशु–पालन की ओर आकृष्ट हुए और समूह में रहने लगा। एक समूह दूसरे समूह पर आक्रमण करने लगा और हारे हुए समूह को बन्दी बनाकर उससे कृषि कार्य करवाने लगा, इस प्रकार की प्रकृति जब चरम सीमा पर पहुंच गयी, तभी सामंतवादी प्रवृति पनपने लगी, शक्तिशाली व्यक्ति भूमि विहीन व्यक्ति से बलात उत्पादन का कार्य करवाने लगा जिस कारण समाज में दो वर्ग की परम्परा कायम होने लगी। साथ ही मनुष्य में व्यक्तिगत धन अर्जन की प्रवृति भी बढ़ती गई। व्यापार और उद्योग धीरे–धीरे विकास की ओर बढ़ता गया। व्यापार और उद्योग की समृद्धि के कारण मुद्रा का भी प्रचलन हो गया तथा भूमि एवं मूद्रा पर अपना अधिकार जमाने वाले को पूँजीपति की संज्ञा दी जाने लगी। इसी सब कारणों से समाज में शोषक एवं शोषित का वर्ग उत्पन्न हो गया। शोषकों की स्थिति जहाँ बनती गयी, वहीं शोषितों की स्थिति बद से बदतर होती चली गई।

सभ्यता के विकास के साथ ही समाज का शोषक और शोषित वर्ग उग्र रूप धारण करता गया। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रत्येक क्षेत्र में शोषण से मुक्ति पाने के लिए शोषित वर्ग संघर्ष का आह्वान किया। इसी संघर्षरत शोषित वर्ग को आधुनिक काल अर्थात मार्क्सवादी शब्दावली में दास वर्ग की संज्ञा दी गई। सभी तरह से जो पराजित हुआ हो वही स्त्री एवं दास वर्ग है। दूसरे रूप में वह है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से शोषित, उपेक्षित एवं प्रताड़ित है तथा असंगति एवं विसंगति के शिकार होता है वही स्त्री एवं दास वर्ग है। आज का मध्यम वर्ग भी इसी स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी में आता है। यह वर्ग जीवन के आर्थिक क्षेत्र में स्त्री एवं दास वर्ग अवश्य, लेकिन रूढ़ि–वादी जर्जर भावना के कारण बुर्जुआ भाव से भी ग्रसित है।

''स्त्री एवं दास वर्ग'' का चित्रण भारत के प्राचीनतम ग्रथं ऋग्वेद पुराण, ब्राहमण ग्रंथ, बौद्व ग्रन्थ एवं जैन ग्रंथों में भी उपलब्ध हैं। यह सत्य है। आधुनिक काल में स्त्री एवं दास वर्ग को जिस रूप में चित्रित किया गया है, उस रूप में वहाँ चित्रित नहीं है। प्राचीन काल में आर्य की स्थिति अच्छी थी और अनार्य की स्थिति दयनीय थी आर्यो की पूजा होती थी, वहीं सम्पूर्ण ऋग्वेद में अनार्यों की भर्त्सणा की गई है। इन्हें दास, दस्यु या असुर की संज्ञा दी गई। दासों और दस्युओं के अपने नगर थे जिनके विनाश की प्रार्थना आर्यो ने बार–बार इन्द्र से ही है।

आर्यो–अनार्यों का संर्घष पर्याप्त समय तक चलता रहा, अन्त में आर्यो ने दस्यु तथा दास जातिवालों अनार्यों को बुरी तरह पराजित कर दिया। युद्ध में काम आने के पश्चात बहुत अधिक संख्या में दस्यु या दास जाति हो गईं। इन शेष लोगों को विवश होकर या तो आर्यों से कहीं बहुत दूर जंगल कन्दराओं की शरण लेनी पड़ी या तो उन्हीं की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। फलतः इस दस्यु या दास जाति के इतने अधिक लोग गुलाम बनाये गये कि दास शब्द का अर्थ ही गुलाम हो गया। यही दास शब्द सर्वहार का पर्याय बन गया। डी0 एन0 झा के अनुसार संभवतः आदिवासी जनजातियों के अधिकतर सदस्य आर्य–जीवन के घेरे के बाहर के प्राणी समक्षे जाते थे और नये समाज में उन्हें सबसे निचले दर्जे में रख दिया गया था।

अनार्य ही केवल स्त्री एवं दास वर्ग या शोषित नहीं थें, अपितु आर्यों में भी स्त्री एवं दास वर्ग का एक अलग वर्ग था जब आर्य भारत में आये तब वे तीन श्रेणियों में विभक्त थे। योद्धा अथवा अभिजात, पुरोहित और सामान्य जन अर्थात स्त्री एवं दास वर्ग वौद्धकालीन समाज में भी स्त्री एवं दास वर्ग का चित्रण मिलता है, यह चित्रण शूद्र एवं दास के रूप मिलता है। शूद्र प्रमूखतः सेवक और मजदूर के रूप में कार्य करते थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र भूमिहीन थे। इन्हें भतक और कर्मकर कहा जाता था। हीन–जातियों मे चांडालों की अवस्था सर्वाधिक शोचनीय थी। अभागे चांडालों का समाज में सर्वत्र तिरस्कृत होना पड़ता और बेचारे नगर–सीमा से हटकर अपने घर बनाते थे। जातक कथाओ में स्त्री एवं दास वर्ग के रूप में दास का वर्णन मिलता है। दासों के प्रति दासपत्तियों का व्यवहार सदैव कठोर रहा, दासों का क्रय–विक्रय भी किया जाता था। जैन धर्म के समय में भी स्त्री एवं दास वर्ग का अस्तित्व कायम था। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने निम्न जातियों के प्रति बहुत ही उदार दृष्टिकोण अपनाया, इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन के समय में भी स्त्री एवं दास वर्ग कायम था।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल से लेकर जैन के समय तक स्त्री एवं दास वर्ग का पूर्ण अस्तित्व था। जिनका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा जर्जर थी। कौटिल्य का अर्थशास्त्र अपने पूर्व के सभी तथ्यों को समावेश किए हुए है। इसमें चन्द्रगुप्त के समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दशा का विशाद चित्रण उपलब्ध होता है। अतः इसमें भी स्त्री एवं दास वर्ग का चित्रण अपने सभी आयामों के साथ चित्रित है।

कौटिल्य के अर्थशस्त्र में समाज को चार वर्णो में विभाक्त किया गया है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शूद्र ही स्त्री एवं दास वर्ग माने गये, इसका कारण यह है कि सर्वहारा की जो परिभाषा दी गई है–शूद्र का जीवन उसी से साम्य रखता है। कौटिल्य ने सभी वर्णे के स्वधर्म को स्थापित करते हुए, शूद्र के लिए द्विजातियों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य की सेवा करना उसका स्वधर्म बतालाया। स्त्री एवं दास वर्ग के अन्तर्गत चाण्डाल की भी गिनती होती थी। चाण्डाल एक ऐसे वर्ग के व्यक्ति थे, जिसे समाज में हीन दृषिट से देखा जाता था। उसका निवास नगर से दूर श्मशान के समीप होता था। सामंतवादी वर्ग में यह प्रवृत्ति अभी भी विद्यमान है कि वह अपने से हीन जाति या वर्ग को नहीं देखना चाहता, यही स्थिति मौर्यकाल में भी थी। नाई, सुनार, बढ़ई, आदि जातियो के लोग न तो अपने को शूद्र मानते थे और न उच्च वर्ण ब्रह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्वारा अपने वर्गों में अपनाये जाते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन नाई, सुनार, बढ़ई, आदि भी स्त्री एवं दास वर्ग में थे।

प्राचीन काल से ही दास प्रथा एवं अस्पृश्यता प्रचलित रही है, दास को स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी में रखा गया है। कारण दास संज्ञा पराधीनता का द्योतक है और पराधीन व्यक्ति के भाग्य में सुख कहाँ, दासो के सुख–दूख के विधाता तो उनके स्वामी थे। ऐसे दासों की प्रथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी मिलती है। इस काल में कुछ लोग जन्म से दास, उदर–दास हुआ करते थे।, जिन्हें खरीदा और बेचा जा सकता था। मलेच्छ लोग अपने बच्चों और अन्य संबंधियों को दास के रूप में बेच सकते थे। आर्य भी विशेष परिस्थिति में दास हो सकते थे, लेकिन दासत्व से शीघ्र ही उसे छुटकारा मिल जाता था। वे जन्म भर दास नहीं रहते थे। यदि स्वामी से किसी दासी के संतान उत्पन्न हो जाए तो वह संतान और उसकी माता दोनों का दासत्व से छुटकारा पा जाती थी। पर यदि दासी अपने और अपनी संतान के हित की दृष्टि से स्वामी के पास ही रहना चाहे, तो उसके भाई–बहन दासत्व से मुक्त कर दिये जाते थे। जब कोई दास या दासी एक बार दासत्व से स्वतंत्र हो जाएं तो उन्हें फिर से बेचने अेर रहने रखने पर जुर्माना किया जाता था। वशर्ते कि उन्होने स्वयं ही ऐसा करने के लिए स्वीकृति न दे दी। जो दास–स्त्रियां धात्री, दाई परिचारिका आदि का कार्य कर रही हो, यदि उनके प्रति अनाचार किया जाए तो इसी आधार पर उनका दासीत्व समाप्त हो जाता था और वे स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती थी।

आधुनिक विचारको ने नारी को भी स्त्री एवं दास वर्ग के अन्तर्गत रखा है कारण नारी भी सदा से प्रताड़ित, उपेक्षित और परतंत्र रही है। प्राचीन भारत के समाज में पुरुष का स्थान नारी से उच्च होने के कारण उससे स्वाभावतः पुनर्विवाह के अधिकार का उपभोग किया। मौर्य युग में वैश्यावृति भी प्रचलित थी, यह गणिका और रूपाजीवाएं के नाम से जानी जाती थी। राजप्रासाद

में राजा के मानोरंजन के लिए बहुत सी गणिकाएं नियुक्त थी। गणिकाएं को वेतन भी दिया जाता था। गणिकाएँ रूप यौवना सम्पन्न हेती थी। गणिकाएँ की उम्र जब ढ़ल जाती थी, तो उन्हे रसोई–धर आदि के कार्य में लगा दिया जाता था। राजज्ञा के अनुसार गणिकाएं अन्य पुरुषों की काम पिपासा को शांत करती थी। आज्ञा के उल्लंधन करने पर उन्हें दण्ड भी दिया जाता था। स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी में आनेवाली एक और वर्ग मजदूर श्रमिकों अर्थात कर्मचारी का था। ये कर्मकार दो प्रकार के होते थे, कुशल और अकुशल। कुशल कर्मकार स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी से बाहर थे।

निष्कर्ष

वैदिक काल से लेकर मौर्यकाल तक के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री एवं दास वर्ग का अस्तित्व सदा से रहा है। स्त्री एवं दास वर्ग की स्थिति में प्राचीन भारत में कुछ सुधार अवश्यक हुआ, लेकिन उसकी कथा–न्यथा का इतिहास चलता ही रहा। स्त्री एवं दास वर्ग का यह इतिहास चक्र तबतक चलता रहेगा जबतक सामंतबाद की प्रवृति के स्थान पर साम्यवाद की प्रकृति, पूर्ण रूप से पनप न जाय। स्त्री एवं दास वर्ग की दयनीय स्थिति, सामंतवाद की शोषक नीति और पूंजीवादी व्यवस्था ने आधुनिक विचारक कालमार्क्स को उसकी दशा सोचने के लिए विवश किया।

संदर्भ स्रोतः

1. नाहर रतिभानु सिंह प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास किताब महल–इलाहाबाद 1988, 70.
2. वहीए पृ0 सं0–70।.
3. वहीए इलाहाबाद 1988, 70।.
4. झा डी0 एन0 प्राचीन भारत एक रूपरेखा ''पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 1980, 24.
5. झा डी0 एन0 प्राचीन भारत एक रूपरेखा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 1980, 23.
6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/28/5. सिंह डा0 मदनमोहन वुद्वकालीन समाज और धर्म बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना 1972.
7. अंगुत्तर–निकाय–3 पृ0 सं0 37–38–वहीं पृ0 सं0–24.
8. मणिझम–निकाय–1 पृ0 सं0–152, –वही पृ0 सं0–25.
9. जातक –, 4 पृ0 सं0–200, 376, 390, सिंह डा0 मदनमोहन बुद्वकालीन समाज और धर्म बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सम्मेलन भवन पटना–1972 पृ0 सं0–26
10. झा डी0 एन0 प्राचीन भारत एक रूपरेखा ''पीपूल्स'' पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 1980 पृ0 सं0–46
11. शूद्रस्य द्विजाति शूश्रृषा वार्ता का कुशीलवकर्म च, कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण–1 अध्याय–3, कांगले आर0 पी0 द्वारा संपादित बम्बई–1958
12. सिंह डा0 मदनमोहन–बुद्वकालीन समाज और धर्म–बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना 1972, पृ0 सं0–33
13. विधांलकार डा0 सत्यकेतु–मौर्य साम्रज्य का इतिहास श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 1986, पृ0 सं0–367
14. विधालंकार डा0 सत्यकेतु–मौर्यसाम्रज्य काइतिहास श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली –1986, पृ0 सं0–368
15. चौधरी राधाकृष्णा–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, जानकी प्रकाशन नई दिल्ली–1986
16. चौधरी राधाकृष्ण–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, जानकारी प्रकाशन नई दिल्ली–1986, पृ0 सं0–139
17. चौधरी राधाकृष्ण–प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास जानकी प्रकाशन नई दिल्ली–1986, पृ0 सं0–14